Paper : Self Management in the Gita, Faculty : Dr. MeghrajMeena

Class :B.A. (Hons.) 2nd Semester Dept. of Sanskrit, Shivaji College, Uni. of Delhi

विषय : श्रीमद्भगवद्गीता में आत्मप्रबन्धन का अर्थ, उपाय व साधन

भारतीय ज्ञान परम्परा में प्रस्थानत्रयी (श्रुतिप्रस्थान, स्मृतिप्रस्थान, न्यायप्रस्थान) के अन्तर्गत श्रीमद्भगवद्गीता स्मृतिप्रस्थान के रूप में सर्वोत्तम ग्रन्थ है। श्रीमद्भगवद्गीता एक समग्र दर्शन है जिसके श्रवण-मनन-निदिध्यासन मात्र से मनुष्य सम्पूर्ण मानसिक द्वन्द्वों से मुक्त होकर परम शान्ति की प्राप्ति कर सकता है। श्रीमद्भगवद्गीता महाभारत का एक अंश है। महाभारत के भीष्मपर्व के 25 वें अध्याय से लेकर 42 वें अध्याय तक 700 श्लोकों में लिखा गया ग्रन्थ है। अधर्म का विनाश और धर्म की स्थापना के लिए जब धनुर्धर अर्जुन अपने स्वजनों को युद्ध में सामने देखकर मोहग्रस्त हो जाता है और किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर युद्ध करने से इन्कार करने लगता है। उस समय अर्जुन को कर्त्तव्य का बोध कराने तथा उसे युद्ध के लिए प्रेरित करने हेतु जो उपदेश उसे दिया वही महर्षि वेदव्यास द्वारा यथोपदिष्ट रूप में महाभारत के अन्तर्गत गीता के श्लोकों में निबद्ध है। गीता में समस्त दर्शनों एवं उपनिषदों का सार विद्यमान है।

आत्मप्रबन्धन का अर्थ - श्रीमद्भगवद्गीता में आत्मप्रबन्धन शब्द रहस्यात्मक अर्थ की अनुभूति कराने वाला है। कोशग्रन्थों में आत्मा शब्द के लिए अन्त:करण, मन, बुद्धि, जीवात्मा, परमात्मा इत्यादि शब्दों का प्रयोग प्राप्त होता है। आत्मप्रबन्धन का शाब्दिक अर्थ है- अपने आपका या स्वयं का प्रबन्धन। स्वयं का प्रबन्धन करने से तात्पर्य है कि जब व्यक्ति अपनी इन्द्रियों को बाह्य विषयों से हटाकर किसी एक विषय में एकाग्र करके श्रीकृष्ण की भावना से युक्त हो जाये। जो व्यक्ति श्रीकृष्ण की भावना से युक्त हो जाता है वह समस्त कष्टों से मुक्त हो जाता है। श्रीमद्भगवद्गीता में आत्मप्रबन्धन शब्द का प्रयोग चार अर्थों में प्राप्त होता हैं -

आत्मा का प्रबन्धन - इस अर्थ में आत्मा का अर्थ अन्त:करण है। आचार्य शंकर ने श्रीमद्भगवद्गीता शाङ्कर भाष्य में आत्मा का अर्थ अन्त:करण किया है। अन्त:करण(जो मानव शरीर के अन्तर्गत होने के कारण अन्त:करण कहलाते है) के अन्तर्गत मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार इन चार तत्त्वों को स्वीकार किया

गया है। अभ्यास और वैराग्य के द्वारा अन्तंकरण (मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार) को बाह्य विषयों से हटाकर एकाग्र करना ही आत्मप्रबन्धन कहलाता है।

आत्मा के द्वारा प्रबन्धन- प्रस्तुत् अर्थ में आत्मा शब्द का अर्थ अन्त:करण है। अभ्यास और वैराग्य के द्वारा नियन्त्रित अन्त:करण के द्वारा अपने जीवन को सुव्यवस्थित करना ही आत्मप्रबन्धन है।

आत्मा के लिए प्रबन्धन- यहाँ पर आत्मा का अर्थ जीवात्मा है अर्थात् जीवात्मा के लिए प्रबन्ध करना ही आत्मप्रबन्धन है। शास्त्रों के स्वाध्याय से उस नित्य स्वरूप जीवात्मा के शुद्ध स्वरूप की अनुभूति करना ही आत्मप्रबन्धन है।

आत्मा में प्रबन्धन - आत्मा अर्थात् परमात्मा में जीवात्मा को व्यवस्थित करना ही आत्मप्रबन्धन है। मानव जीवन का अभीष्ट लक्ष्य आत्मा का परमात्मा के साथ तादात्म्यभाव स्थापित करना ही है। अत: जीवात्मा और परमात्मा की एक रूप में प्रतीति होना ही आत्मप्रबन्धन है।

आत्मप्रबन्धन के तत्त्व - श्रीमद्भगवद्गीता में आत्मप्रबन्धन के तत्त्वों के रूप में मन, बुद्धि, आत्मा और परमात्मा को स्वीकार किया गया है। ये चारों तत्त्व उत्तरोत्तर अपने पूर्ववर्ती से श्रेष्ठ है इनमें मन और बुद्धि जड़ हैं जबकि आत्मा चेतन है जिसका संयोग प्राप्त कर मन बुद्धि भी सक्रिय हो जाते हैं और इसी प्रकार मन तथा बुद्धि के बिना आत्मा चेतन होते हुए भी निष्क्रिय बना रहता है। आत्मा और परमात्मा का नित्य सम्बन्ध है इन दोनों की एकत्वरूप में अनुभूति होना ही आत्मप्रबन्धन है। आत्मप्रबन्धन के इन तत्त्वों का संक्षिप्त में स्वरूप इस प्रकार हैं -

मन - संकल्प-विकल्पात्मक वृत्ति का नाम ही मन है। इन्द्रियों में मन को उभयात्मक माना है अर्थात् ज्ञानेन्द्रिय भी है और कर्मेन्द्रिय भी। मन के स्वरूप के विषय में कहा गया है - "मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयो:" अर्थात् मन की चंचलता के कारण मनुष्य बन्धन में पड़ता है और मन की एकाग्रता से मनुष्य मोक्ष (परमपद) की प्राप्ति कर सकता है। श्रीमद्भगवद्गीता में मन को अत्यन्त चंचल और अस्थिर माना गया है जिस प्रकार वायु की गति को मनुष्य अपने वश में नहीं कर सकता उसी प्रकार मन को वश में करना दुष्कर है। अभ्यास और वैराग्य के द्वारा ही मन को नियन्त्रित किया जा सकता है।

बुद्धि - अन्त:करण की निश्चयात्मिका वृत्ति का नाम ही बुद्धि है। प्रकृति का प्रथम विकार बुद्धि को विवेशक्ति का द्योतक माना गया है इसका अपर नाम महत् भी है। निश्चय, व्यवसाय या अध्यवसाय करना बुद्धि का स्वाभाविक धर्म है।

आत्मा - आत्मा परमात्मा से अपृथक् तद्रूपात्मक उसकी विभूति है जो कि चेतनस्वरूप है। श्रीमद्भगवद्गीता में आत्मा को परा प्रकृति कहा गया है जो कि समस्त प्राणियों के अन्दर जीवरूप में अवस्थित है। आत्मा के द्वारा ही जड़ रूपात्मक मन और बुद्धि में चेतना का संचार होता है।

परमात्मा - प्रकृति और आत्मा (पुरुष) का अधिष्ठाता परमात्मा को माना गया है जो कि समस्त पदार्थों की उत्पत्ति एवं विनाश का मूल कारण है। श्रीमद्भगवद्गीता के तेरहवें अध्या में परमात्मा के लिए परमेश्वर, ईश्वर, आत्मा, ब्रह्म आदि शब्दों का प्रयोग प्राप्त होता है। परमात्मा को सम्पूर्ण लोक की उत्पत्ति, स्थिति और लय का मूल कारण माना गया है।

आत्मप्रबन्धन के साधन - आत्मप्रबन्धन की प्रक्रिया को सफल बनाने के लिए आठ प्रकार के साधनों या उपायों को आवश्यक माना गया हैं-

1. **अभ्यास** - किसी भी कर्म को बार बार लम्बे समय तक निरन्तर रूप से करते रहना अभ्यास कहलाता है। अभ्यास का शाब्दिक अर्थ है जब व्यक्ति सांसारिक विषयों से अपनी इन्द्रियों को हटाकर एकाग्र कर ले। क्योंकि हमारी इन्दियों की स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि वे बाह्य विषयों की ओर ज्यादा आकर्षित होती है। अत: बहिर्मुखी इन्द्रियों को अन्तर्मुखी बना लेना ही अभ्यास है। जीवन में व्यक्ति को अपने अभीष्ट लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अभ्यास के माध्यम से इन्द्रियों का निग्रह आवश्यक है।

2. **वैराग्य** - राग का अभाव ही वैराग्य है। जब व्यक्ति अभ्यास के माध्यम से अपनी इन्द्रियो को एकाग्र करके सांसारिक विषयों का परित्याग कर लेता है उस समय मनुष्य वैराग्य की प्राप्ति हो जाती है। श्रवण-मनन-निदिध्यासन द्वारा शरीर-इन्द्रिय से लेकर ब्रह्मलोक पर्यन्त सम्पूर्ण अनित्य भोग्य पदार्थों में बुद्धि का घृणा से युक्त हो जाना ही वैराग्य है। मनुष्य का जब किसी वस्तु के प्रति घृणा का भाव हो जाता है तब उन विषयों की ओर इन्द्रियों की प्रवृत्ति नहीं होती।

3. **मन का नियन्त्रण** - मन के नियन्त्रण से तात्पर्य है कि अभ्यास और वैराग्य द्वारा मन को नियन्त्रण करना। श्रीमद्भगवद्गीता में मन के लिए चञ्चल, दृढ़, बलशाली इत्यादि रूपकों का प्रयोग किया गया है। मन की तुलना वायु से की गई है, जिस प्रकार वायु की गति को मनुष्य अपने नियन्त्रण में नहीं कर सकता उसी प्रकार मन को वश में करना बहुत कठिन है। चञ्चल मन को केवल अभ्यास और वैराग्य के माध्यम से नियन्त्रित किया जा सकता है। एक विद्यार्थी के द्वारा अपने मन की गति या ऊर्जा को अध्ययन या अपने अभीष्ट लक्ष्य की प्राप्ति में लगा देना ही मन का निग्रह है।

4. **बुद्धि की स्थिरता** - आत्मप्रबन्धन के लिए बुद्धि की स्थिरता बहुत आवश्यक है। अभ्यास और वैराग्य द्वारा जब संकल्प-विकल्पात्मक मन नियन्त्रित हो जाता है तब मनुष्य का अन्त:करण शान्त हो जाता है। अन्त:करण की शान्ति हो जाने के बाद बुद्धि अपने वास्तविक अध्यवसायात्मक स्वरूप में स्थित हो जाती है। उस समय बुद्धि चञ्चल मन को सांसारिक विषयों में भटकने नहीं देती। स्थिर बुद्धि से ही मनुष्य अपने अभीष्ट लक्ष्य की प्राप्ति करके परमशान्ति की प्राप्ति कर लेता है।

5. **निष्काम-कर्म में निरन्तरता** -आत्मप्रबन्धन की सफल परिणति के लिए मनुष्य की कर्मों में नैरन्तर्यपूर्वक प्रवृत्ति होना आवश्यक है। कर्मों में निरन्तरता से तात्पर्य है कि लक्ष्य में बुद्धि को स्थिर करने के बाद लक्ष्य के अनुकूल प्रयत्न करते रहना। अभ्यास, वैराग्य, मनोनिग्रह एवं बुद्धि की लक्ष्य में स्थिरता से व्यक्ति बाह्य विषयों में प्रवृत्त नहीं होता अर्थात् इन साधनों के माध्यम से मन और बुद्धि को सांसारिक विषयों से हटाकर एकाग्रता की प्राप्ति करना है।

6. **अनासक्तभाव से कर्म**- आत्मप्रबन्धन के लिए व्यक्ति को अनाक्तभाव से कर्म करना चाहिए। लक्ष्यप्राप्ति में जितना महत्त्व कर्म करते रहने का है उतना ही महत्त्व अनाक्तभाव या निष्काम भावना का है। आत्मप्रबन्धन के सम्बन्ध में अनासक्त भाव का तात्पर्य है कि कर्म करते समय फल पर ध्यान केन्द्रित न करना। फल पर ध्यान केन्द्रित करने से कर्म प्रभावित होता है। इसलिए श्रीकृष्ण ने कर्म के फल के त्याग या अनासक्त भाव को आत्मप्रबन्धन हेतु सर्वश्रेष्ठ माना है। जो मनुष्य कर्मफल का त्याग कर देता है वह परम शान्ति की प्राप्ति कर सकता है। परम शान्ति की प्राप्ति करना ही आत्मप्रबन्धन है।

7. **ईश्वर के प्रति समर्पण भाव** - आत्मप्रबन्धन के लिए ईश्वर के प्रति समर्पण भाव का होना आवश्यक है। ईश्वरार्पणभाव से तात्पर्य है कि मनुष्य ने अभ्यास, वैराग्य, मनोनिग्रह, बुद्धि की स्थिरता, कर्म की निरन्तरता, निष्काम-भाव कर्म, अनात्तभाव आदि उपायों के द्वारा जो सफलता या अभीष्ट प्राप्ति की है उसे ईश्वर या परमात्मा को समर्पित कर देना। व्यक्ति ने अपनी सफलता का श्रेय परमात्मा को देते हुए अपने ऊपर परमात्मा की अनुकम्पा या अनुग्रह को स्वीकार करके सर्वथा अहंकार शून्य मन वाला हो जाना चाहिए । जब व्यक्ति के अन्दर से 'मैं' 'मेरा' 'मैंने' आदि अहम् सम्बन्धी भावों का विनाश हो जाता है उस समय वह ब्रह्म के साथ तादात्म्यभाव को स्थापित करके श्रीकृष्ण की भावना से युक्त हो जाता है।

8. **ईश्वरभक्ति** - आत्मप्रबन्धन हेतु प्रमुख साधन है अनन्यभक्ति या ईश्वरभक्ति। आत्मा अर्थात् स्वयं के द्वारा अपने पारमार्थिक शुद्ध स्वरूप का अनुसन्धान करना ही भक्ति है। ईश्वरभक्ति उपाय के द्वारा आत्मज्ञानप्राप्ति आत्मप्रबन्धन का वह साधन है जिसको प्राप्त किये बिना परमलक्ष्य को प्राप्त करना असम्भव है। मनुष्य जीवन का एकमात्र परमलक्ष्य मोक्षप्राप्ति है।